बेटी-हंता पिताओं को भी मुक्ति चाहिए

विकास नारायण राय

ग्वालियर की एक लिंग कार्यशाला में एक सक्रियकर्मी ने चंबल क्षेत्र में राज्य सरकार के 'बेटी बचाओ' अभियान से चिढे अभिभावक की प्रतिक्रिया बताई, ''का हम अपनी मोढिन को मार न सकत।'' मोढी यानी बेटी। क्या हम अपनी पत्नी को भी नहीं पीट सकते; यह हर भारतीय मर्द की अंदर की आवाज होती है। हर बाप अपनी बेटी को सम्पत्ति से वंचित करता ही है। हरियाणा में रोहतक भाहर के घरणावती गांव में परिजनों द्वारा अपनी 20 वर्ष की लड़की व उसी गांव के उसके 23 वर्ष के प्रेमी की पाश्विक हत्या में स्त्री विरुद्ध हिंसा की सामाजिक डी एन ए में गहरे उतरी, पूरी तस्वीर देखी जा सकती है। यहां तक कि इस संदर्भ में उन उपायों की भी परख की जा सकती है जो दैनिक हिंसा के ऐसे हौव्वों से मुक्ति दिला सकते हैं। स्त्री को भी और समाज को भी।

देश की राजधानी के ऐन पड़ोस में हुए इस नृशंस कुकृत्य में बहुत कुछ स्तब्धकारी है। पहली नजर में अबूझ लगता है कि हत्यारे पिता, चाचा, भाई के व्यवहार या भंगिमा में कोई मलाल नहीं नजर आता। उनके खाप–समाज में भी बजाय किसी हताशा या पश्चाताप के एक अपराधिक षणयन्त्रकारी चुप्पी भर है और वहां जीवन सामान्य ढर्रे पर चलता दिख रहा है। कमरे में अनायास घुस आये इस हाथी को राजनैतिक हलकों द्वारा अनदेखा करने की परम्परा इस बार भी बखूबी चल रही है। न कहीं मोमबती मार्च हैं; न हत्यारों को फांसी देने की मांग पर उतारू उत्तेजित प्रदर्शन। पुलिस, अपराध की छानबीन में सहयोग न मिलने का रोना रो रही है। अंत में सबूतों के अभाव में हत्यारों को सजा भी नहीं मिलनी; जैसा कि ऐसे मामलों में होता आया है।

दरअसल, बलात्कार जैसी यौनिक हिंसा पर जमीन आसमान एक करने वाले समाज व राज्यतंत्र के लिए घरणावती जैसी लैंगिक हिंसा से मुंह फेरना आम बात है। हत्यारों की मनःस्थिति में, घर से प्रेमी के साथ चली गई बेटी को कपटी आश्वासन पर कि दोनों की भादी कर दी जाएगी, वापस गांव बुलाकर मार देना सामान्य बात हुई। आखिर उनका अपनी बेटी से रोजाना का सम्बन्ध ा भी तो कपटपूर्ण ही रहता है– पहनावा, स्वास्थ्य, पहल, स्वच्छंदता, मित्रता, कैरियर, सम्पत्ति, विवाह यानी कमोवेश हर मामले में। ये हत्यारे अपने समाज के दिलेर हीरो भी हैं कि उन्होंने इस कपट को समय पड़ने पर अंतिम परिणति तक पहुंचाने की 'हिम्मत' दिखायी है; समाज की 'इज्जत' बचाई है।

इसके बरक्स, सोचिए, क्या लड़की का परिजनों में अगाध विश्वास हमें स्तब्ध ा करता है? वह उनके विश्वासघात का कितनी सहजता से शिकार हो गयी! बहकाने पर स्वयं भी गांव वापस आ गई और प्रेमी को भी साथ ले आई– सीधे मौत के मुंह में। क्या परिजनों के छल में उसका अंधवि वास भी स्वाभाविक नहीं! आखिर उसे परिवार में कदम–कदम पर उसके साथ हो रहे प्रत्यक्ष/प्रच्छन्न भेदभाव के बीच ही तो बड़ा किया गया था, यह बताते हुए कि वह सब उसके भले की बात है। उसकी हत्या उसके साथ हो रही उसी हिंसा की अंतिम परिणति रही। परिवार/समाज से उसका नाता 'चुप्पी' का था। इसीलिए वह चुपचाप घर से चली गयी थी। इसीलिए वह चुपचाप मार दी गयी। उस जैसी हजारों–लाखों लड़कियां हैं; किस–किस को हीरो बनाएं?

राजनीति के सत्ता केन्द्र भी बखूबी जानते हैं कि ऐसे समाजों को पुरुश ही चला रहे हैं और महिलाएं उनकी जूती पर रहती हैं। जब मामला बलात्कार जैसी यौनिक हिंसा का होता है तो पितृसत्ता के अहम् को ठेस लगती है और दोशियों को ऐसी सजा जो सारे समाज के लिए सबक हो, का मुद्दा सभी का साझा मुद्दा हो जाता है। जब घरणावती जैसी कातिल लैंगिक हिंसा सामने आती है जिस पर पितृसत्ता की मोहर लगी हो, तो राजनीतिज्ञों के लिए तटस्थ रहना ही लाभदायी विकल्प बन जाता है।

एक टी वी चैनल पर हरियाणा के मुख्यमंत्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा ने घरणावती हत्याओं पर कहा, ''कानून अपना काम करेगा।'' पर वह कानून है कहां जो अपना काम करे। भारतीय दंड संहिता में हत्या की सजा के लिए धारा 302 है जो लालच, वासना, ईर्ष्या, आवेश जैसी भावनाओं में बहकर किए गए मानव वध के लिए होती है। पर लैंगिक हत्याओं का संसार इनसे परे का संसार है। इसके लिए जरूरी डीएनए एक अलग सामाजिक प्रक्रिया से तैयार होता है। इस डीएनए की एक ही काट है– स्त्री का लैंगिक सशक्तिकरण। ऐसा सशक्तिकरण कि वह अपने सिर पर लादा गया 'इज्जत' का बोझ खुद उतार कर दूर फेंक सके। तब, जिनकी 'इज्जत' जाती है वे आत्महत्या के लिए स्वतंत्र होंगे, न कि स्त्री की हत्या कर दनदनाते घूमने के लिए। यौनिक हिंसा से निपटने के दंड विधान पर न्यायमूर्ति वर्मा कमेटी ने इसी वर्श, दिसम्बर 2012 के दिल्ली बलात्कार कांड के व्यापक जन–असंतोश के संदर्भ में संस्तुतियां दीं, पर लैंगिक हिंसा का क्षेत्र अछूता ही छोड़ दिया गया है। यानी स्त्री के दैनिक जीवन में गहरी हिंसा की जड़ें ज्यों की त्यों फल–फूल रही हैं। इन जड़ों को काटना जरूरी है। उन कानूनों को लाना जरूरी है जो पुरुश और स्त्री के बीच की लैंगिक असमानता पर निर्णायक प्रहार कर सकें। उन कानूनी फैसलों को न्याय–व्यवस्था के हर मंच के लिए स्थाई मार्गद र्क बनाना जरूरी है जो लैंगिक हिंसा की शिकार स्त्री के पक्ष में खड़ा होना जानते हैं। हरियाणा के ही भिवानी जिले की एक साहसी महिला सेशंस जज ने इसी वर्ष दो ऐसे पशु–हत्यारों को, गवाहों के बैठ जाने के बावजूद, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर, फांसी की सजा दी जिन्होंने दिन–दहाड़े गांव में अपनी दो रिश्तेदार महिलाओं को बदचलन घोषित कर सार्वजनिक रूप से लाठियों से मार डाला था। इनमें से एक हत्यारा बलात्कार के अपराध में कारावास काट रहा था और पैरोल पर गांव आया हुआ था। पितृसत्ता की 'नैतिकता' से हमें इसी तरह निपटना होगा।

दिल्ली बलात्कार कांड के उस सफाई वकील का उदाहरण लीजिए जो सरेआम चिल्लाकर दावा कर रहा है कि उस कांड की पीड़ित लड़की के स्थान पर यदि वकील की बहन अपने पुरुष मित्र के साथ घूम रही होती तो वह बहन को जिंदा जला देता। वकील क्या यदि इस वहशियाना कांड में फांसी की सजा पाये चारों दोशियों के सामने यही प्रश्न रखा जाय तो वे भी पितृसत्ता के 'नैतिक' मंच की जमीन से वही दावा करेंगे जो वकील ने किया है। यह पितृसत्ता के डी एन ए का ही असर है कि वकील ने भी लड़की को जला मारने की बात की पर साथ के पुरुष–मित्र का ख्याल भी उसे नहीं आया। इसी तरह घरणावती कांड में भी लड़की का परिवार ही सक्रिय हुआ और नृशंस हत्याएं भी लड़की के परिवार ने ही कीं, लड़के का परिवार प्रेमी युगल के गांव से चले जाने पर भी निश्क्रिय रहा। जमीनी सच्चाई यही है कि ऐसे कानून ही नहीं हैं जो लिंग स्टीरियोटाइप का दमन कर सकें, और स्त्री का हाथ पकड़कर उसे सशक्तिकरण की राह पर ले जा सकें। अचेत को सूचनाओं से लाभ नहीं पहुंचता, न अशक्त को कसरत रास आती है। उन्हें पहले अपने दिमाग से सोचने लायक और अपने पैरों पर खड़े होने लायक होना जरूरी है। इस दिशा में ही ले जाने वाले कानून चाहिए। और ऐसी ही समझ भी! 'कानून' यदि महिला सशक्तिकरण का एक पहलू होगा तो 'समझ' अनिवार्य रूप से दूसरा!

बार–बार दोहराने की कीमत पर भी रेखांकित करना जरूरी है कि दिखावटी–बनावटी–मिलावटी–सजावटी कानूनों/उपायों/रिवाजों से स्त्री का सशक्तिकरण नहीं हो पाया है। राखी–दहेज–वस्त्र–शील उसके कवच नहीं बन सके हैं। उसे महिला थाना नहीं, हर पुलिस इकाई में लिंग–संवेदी वातावरण चाहिए; उसे आरक्षण नहीं, हर रोजगार में समान दावा चाहिए; उसके लिए महिला शिक्षण संस्थाएं नहीं, हर तरह का ज्ञान चाहिए; उसे केवल महिला नहीं, श्रेष्ठतम प्रशिक्षक व चिकित्सक चाहिए; उसे महिला बैंक नहीं, हर तरह की आर्थिक पहल में जगह चाहिए; उसे दान–खैरात नहीं, अपने हक चाहिए; उसे नैतिक उपदेश नहीं, सांसारिक विवेक चाहिए। मध्यप्रदेश सरकार ने तो राज्य के महिला विभाग का नामकरण ही 'महिला सशक्तिकरण विभाग' कर दिया है पर उनकी लाडली/कन्यादान जैसी पहल पितृसत्ता को ही मजबूत करती हैं।

महिला सशक्तिकरण कैसे हो? कानून के स्तर पर और समझ के स्तर पर। कानून के स्तर पर एक नया लैंगिक दंड विधान बनाना होगा। इसके अंतर्गत स्त्री का हर अधिकार अहस्तांरणीय होगा। या तो स्त्री उसका उपयोग करेगी, अन्यथा वह राज्य में विलय हो जाएगा। स्त्री को मिलने वाली हर राहत 'रीयल टाइम' में होगी, चाहे वह घरेलू हिंसा से मुक्ति हो या फिर कार्यस्थल पर होने वाले लैंगिक उत्पीड़न से जो स्त्री के यौनिक उत्पीड़न की जमीन तैयार करता है। इस दंड विध ाान में न्याय व्यवस्था के हर इंटरफेस, पुलिस, काउंसलिंग, अदालत, क्षतिपूर्ति, पुनर्वास, सभी के लिए पीड़ित के पास चलकर जाना जरूरी होगा, समयबद्ध रूप से। घरणावती जैसे मामलों में, जहां सारा समाज मूक ाणयंत्र में भागिल है और सारे सबूत नश्ट कर दिये गए हैं, स्वयं को निर्दोश सिद्ध करने की जिम्मेदारी परिजनों की होगी। अभियोजन पक्ष के लिए केवल यह स्थापित करना ही काफी होगा कि लड़की की मृत्यु संदिग्ध परिस्थितियों में हुई है।

समझ के इस स्तर पर कि लैंगिक उत्पीड़न की समाप्ति ही स्त्री को हर प्रकार की हिंसा से मुक्त करेगी, सारे भारतीय समाज को भागिल करना होगा, सबसे पहले अपराध–न्याय व्यवस्था से जुड़े तमाम लोगों को। कानून जरूर संवैध ाानिक मापदंडों पर कसे जाते हैं पर कानून लागू करनेवालों में 'संवैधानिक अनुकूलन' का व्यापक अभाव है। हम 'कानून का भासन' का लाख गुणगान करें पर पीड़ित के लिए 'कानून की भूमिका' निर्णायक होती है। घरणावती जैसी हत्याएं केवल हरियाणा या उत्तर भारत के राज्यों तक ही सीमित नहीं है। सारे देश में एक जैसा ही चलन है। हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब दूसरों से केवल इस तरह भिन्न हैं कि यहां ऐसे कुकृत्यों को संस्थागत रूप से सामाजिक स्वीकृति मिली हुई है; अन्य जगहों पर यह व्यक्तिगत या कुनबागत है। समाज में 'समझ' का अभियान पिताओं की भी पितृसत्ता की विसंगतियों से उसी तरह रक्षा करेगा जिस तरह बेटी की।

घरणावती जैसे कांड हरियाणा के परिदृश्य में इतने दुर्लभ नहीं हैं। कुछ ही वर्श पूर्व रोहतक के ही एक अन्य गांव बहूजमालपुर की एक कमजोर बेटी ने परिवार द्वारा हिंसक प्रतिरोध की आशंका के चलते, अपने प्रेमी के सहयोग से सात परिजनों की जहर देकर हत्या कर दी थी। यह भी पितृसत्ता की ही जय थी। पितृसत्ता के पूर्ण दमन की चुनौती 'कानून' और 'समझ' के लिए और टालना लोकतंत्र पर घातक चोट सरीखा होगा।

एक ही थैली के चट्टे–बट्टे हैं मोदी और आडवाणी

आखिरकार, मोदी के आगे आडवाणी को झुकना ही पड़ा। कांग्रेस के पस्तहाल नेतृत्व को देखते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के रणनीतिकारों को ऐसा लगता है कि मोदी की उग्र हिंदूवादी छवि का लाभ उठाकर सत्ता के शीर्ष तक पहुंचा जा सकता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि मोदी विचारशून्य युवा वर्ग में लोकप्रिय होते जा रहे हैं और इस देश में बहुसंख्यक वोटर हिंदू हैं, पर यह भूलना नहीं होगा कि कई राज्यों में राजनीतिक समीकरण मोदी के पक्ष में नहीं है।

जिस बैठक में मोदी को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया गया, आडवाणी वहां नहीं गए। काफ़ी मान-मनौवल के बावजूद वे अड़े रहे। उन्होंने भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह की कार्य शैली की आलोचना भी कर डाली, पर जब एक के बाद एक उनके सिपहसालारों ने उनका साथ छोड़ दिया तो उन्हें भी आत्मसमर्पण करने को मजबूर होना पड़ा। सुनने में आता है कि आडवाणी ने भाजपा से इस्तीफ़ा देने तक का मन बना लिया था, पर ऐसा करने के बाद राजनीति में कहीं उनके लिए जगह नहीं रह जाती। अब वे भाजपा के शिखर पुरुष के रूप में सम्मानित स्थान बनाए रख सकते हैं।

आडवाणी लंबे समय से अपनी पार्टी और उसके जनक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की नीतियों से असंतुष्ट हैं। जिन्ना प्रकरण के बाद संघ के दबाव में पार्टी अध्यक्ष पद से उन्हें इस्तीफ़ा देना पड़ा। उसी समय से वे पार्टी में उपेक्षित स्थिति में हैं। वैसे, हर हाल में उनका व्यक्तित्व मोदी से कहीं ज्यादा उदात्त है। मोदी वाला टुच्चापन उनमें नहीं है।

वे पहले ही यह घोषणा कर चुके हैं कि भाजपा जनता की अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतरी। उन्होंने यह भी कहा कि आगामी लोकसभा चुनाव में अगर कांग्रेस गठबंधन सत्ता में नहीं आता तो भाजपा गठबंधन के लिए भी सत्ता में आ पाना मुश्किल है। यह सही विश्लेषण है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्होंने सच्चाई को ईमानदारीपूर्वक स्वीकार किया। संभवत: इससे भी संघ उनसे खफा हो गया, क्योंकि संघ के नेताओं का लकड़ी की तलवारें भांजने पर पूरा यकीन है।

मोदी बनाम आडवाणी के द्वंद्व में बहुत से लोगों को यह लगने लगा कि आडवाणी सेकुलर हैं। वैचारिक विभ्रम का इससे बड़ा उदाहरण और कुछ नहीं हो सकता। भूला नहीं जा सकता कि आडवाणी रामरथ यात्रा के सूत्रधार थे, जिसके परिणामस्वरूप पूरे देश में साम्प्रदायिक वैमनस्य फैला और

दंगे हुए, जिसकी परिणति अयोध्या में बाबरी मस्जिद के ध्वंस के रूप में हुई। भाजपा गठबंधन को केंद्रीय सत्ता में लाने के मुख्य आर्किटेक्ट आडवाणी रहे हैं। उन्हें उग्र हिंदूवाद का प्रतिनिधि कहा जाता था और वाजपेयी को उदार हिंदूवाद का। पर हिंदूवाद तो हिंदूवाद है, यह जनवाद नहीं, संप्रदायवाद है। इस सच्चाई को संघ के विचारक गोविंदाचार्य ने सामने लाया था, जब उन्होंने वाजपेयी को 'मुखौटा' कहा था। गोविंदाचार्य ने सच कहा था, जिसका खामियाजा उन्हें भुगतना पड़ा। संघ और भाजपा ने उन्हें दरकिनार कर दिया।

आडवाणी अपनी किशोरावस्था से ही संघ से जुड़े रहे हैं। जनसंघ के प्रमुख नेताओं में रहे। वे हिंदू राष्ट्रवाद की विचारधारा से प्रतिबद्ध रहे हैं। यह तो समाजवादियों और कांग्रेस विरोधी दलों का पाखंड और अवसरवादी दृष्टिकोण था कि उन्होंने इंदिरागांधी को सत्ता से हटाने के लिए जनसंघ से गठजोड़ किया और खुद को सेकुलर भी कहते रहे। यही काम वी.पी. सिंह ने भी किया जब राजीव गांधी को सत्ता से बाहर करने के लिये उन्होंने भाजपा का समर्थन लिया। सेकुलरिज़्म के प्रति वामपंथियों की निष्ठा कितनी खोखली थी, यह तब साबित हुआ जब उन्होंने भाजपा के साथ वी पी सिंह सरकार को समर्थन दिया। यह परले दर्जे की राजनीतिक अवसरवादिता थी, पर फलीभूत नहीं हो सकी। इस दौरान भाजपा की ताकत लगातार बढ़ती चली गई। इसके बाद ही भाजपा ने राष्ट्रव्यापी साम्प्रदायिक अभियान चलाया और केंद्रीय सत्ता पर काबिज होने में सफल रही।

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन में शामिल वे दल जो अपने-आपको सेकुलर कह रहे थे, कैसे सेकुलर हो सकते थे जब गठबंधन का नेतृत्व घोषित रूप से एक साम्प्रदायिक दल कर रहा था। स्पष्ट है, यह सत्ता में भागीदारी के लिये उनका अवसरवादी रवैया था।

आज अपने-आपको सेकुलर और मुसलमानों का मसीहा कहने वाले नितीश कुमार कह रहे हैं कि भाजपा की कमान आडवाणी के हाथ में हो और वह प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार हों तो उनका दल राजग में शामिल हो सकता है। क्या नितीश कुमार या शरद यादव इतने नादान हैं कि वे आडवाणी, संघ और भाजपा की विचारधारा को नहीं समझते? स्पष्ट है कि जब वे राजग में थे तो राजनीतिक अवसरवाद के तहत सत्ता में भागीदारी के लिए थे और आज राजग में नहीं हैं तो इसलिए कि मोदी की कट्टर मुसलमान विरोधी छवि के कारण उन्हें अपने मुसलिम वोट बैंक के टूटने का खतरा दिखाई पड़ता है। दूसरे, वे खुद से आडवाणी को वरिष्ठ मानते हुए उनका नेतृत्व स्वीकार कर सकते हैं, पर मोदी के महज मुख्यमंत्री और एक राज्य विशेष का नेता होने के कारण उन्हें वरिष्ठ नहीं मान सकते और उनसे व्यक्तिगत प्रतिद्वंद्विता का भाव रखते हैं।

स्पष्ट है, भाजपा संघ का राजनीतिक उपकरण है और संघ की विचारधारा हिंदूवाद है, हिंदूराष्ट्र की स्थापना उसका घोषित लक्ष्य है। इसलिए अगर कोई राजनीतिक दल भाजपा गठबंधन में शामिल होता है तो कतई सेकुलर नहीं रह जाता। अटल हों, आडवाणी या मोदी, सभी हिंदूवादी हैं। हिंदूराष्ट्रवाद के पोषक-इतिहासरथ के पहिए को उलट दिशा में मोड़ने जैसे असंभव कार्य में लगे 'महारथी'।

-मनोज कुमार झा